RESEARCH EXPRESSION ISSN 2456-3455 Vol. V, Issue 7, March 2022

मेघदूत में अलंकारों का वर्णन

महेश कुमार अलेंद्र
इंदिरा गाँधी शासकीय कला एवं वाणिज्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, वैशाली नगर, भिलाई, जिला, दुर्ग (छ.ग.)

मानव ही अपनी वस्तुओं को अपने शरीर को तथा अपनी सामग्री को अलंकृत नहीं रखता, बल्कि प्रकृति भी अपने अंगों को अलंकृत करती है। प्रकृति स्वयं अलंकरण की प्रेमी होती है और अपने अंग–प्रत्यंग को नाना सजावट से सजाने में, नये रंगों से रंगीन बनाने में उसे बड़ा आनंद आता है। कवि भी प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करने वाला एक भावुक व्यक्ति होता है। वह भी अपनी रचनाओं को अलंकारों से सजाने का प्रेमी तथा अभ्यस्त होता है। सुंदर बनाने के लिए नयी–नयी सामग्री एकत्र करता है, सुनते ही लोगों के कान स्वतः ही उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं अतः जिन साधनों के द्वारा काव्य या निबंध को सुंदर बनाया जाता है तथा हृदय को आकृष्ट करने की अद्‌भुत शक्ति से वह संपन्न किया जाता है, उनमें से अलंकार ही अन्यतम साधन है। अलंकार में जो वस्तु जीवनी शक्ति डालकर उसे सजीव तथा आकर्षक बनाती है, वह चमत्कार के नाम से प्रख्यात है। अलंकार का अलंकारत्व तभी है जब वह चमत्कार से मण्डित हो।

अलंकार शब्द 'अलम' के साथ 'कृ' धातुओं में घञ प्रत्यय के योग से अलंकार शब्द निष्पन्न होता है। इस प्रकार अलंकार का शाब्दिक अर्थ सुंदरता को बढ़ाने वाले ''सुशोभित करने वाला'' होता है। जिस प्रकार कटक, कुण्डल, हारादि आभूषण कामिनी को सौन्दर्य प्रदान करते हैं, उसी प्रकार अनुप्रास, उपमा आदि अलंकार कविता कामिनी को अलंकृत करते हैं।[1]

अलंकार शब्द की परिभाषा – ''अलङ करोति इति अलङकार।''

आचार्य मम्मट ने अलंकारों को परिभाषित करते हुए लिखा है कि –

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽऽद्वारेण जातुचित।
हारादिवदलङकारास्ते अनुप्रासोपमादयः।।

अर्थात जो काव्य में विद्यमान रस को शव्दार्थ रूपी अंगों के द्वारा कभी–कभी उत्कर्ष युक्त करते हैं वे अनुप्रास और उपमादि हारादि अलंकारों के समान काव्य के अलंकार होते हैं। इसी अभिप्राय को ध्यान में रखकर साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने अलंकार का लक्षण इस प्रकार किया है–

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुप कुर्वन्तोऽलङकारास्तेऽङगदादिवत।। (10\1)

महाकवि जयदेव अपने चंद्रालोक में कहते हैं –

अङगी करोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङकृति।
असौ न मन्यते कस्मादनुणमनलंकृति।। (चंद्रालोक)

अर्थात जो विद्वान अलंकार विहीन शब्द और अर्थ को काव्य कहता है, वह उष्णता विहीन अग्नि को क्यों नहीं मानता? अर्थात् कोयले की अग्नि क्यों नहीं कहता?

आचार्य दण्डी के अनुसार– 'काव्यशोभाकरान् धर्मानिलंकारान प्रचक्षते।'

अर्थात काव्य को सुशोभित करने वाले धमों को अलंकार कहते हैं।

अलंकार के प्रकार – (1) शब्दालंकार
(2) अर्थालंकार
(3) उभयालंकार

* Corresponding Author: alendramahesh1@gmail.com • Mobile No. 9179508655

मेघदूत में अलंकारों का वर्णन

शब्दालंकार– जहाँ चमत्कार केवल शब्दों में ही हो अर्थात् शब्द विशेष के कारण अलंकार की स्थिति बनती है, वहाँ शब्दालंकार होती हैं। शब्दालंकार के अंतर्गत – यमक, अनुप्रास, श्लेष, वक्रोक्ति आदि।

अर्थालंकार– जहाँ चमत्कार केवल अर्थों में ही हो अर्थात अर्थ विशेष के कारण अलंकार स्थिति बनती है, वहाँ अर्थालंकार होती है। अर्थालंकार के अंतर्गत– उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, विभावना, संदेह, भ्रांतिमान, समासोक्ति निदर्शना, काव्यलिंग मानवीयकरण इत्यादि।

उभयालंकार– जहाँ शब्द और अर्थ दोनों से चमत्कार करती है वहाँ उभयालंकार होती है।

महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में अर्थालंकार को अधिक महत्त्व दिया है, और उनमें भी विशेषतः 'उपमा को' जिनके कारण ही इनकी जगत में "उपमा कालिदासस्य" यह उक्ति ख्याति है। कालिदास की उपमायें बड़ी, स्वाभाविक, सरस, तथा मार्मिक होती हैं, अतएव वे जगत में अद्वितीय हैं। उपमा के अतिरिक्त कवि ने उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, रूपक, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास – आदि अलंकारों का मेघदूत में अच्छा निदर्शन किया है।[2] (भूमिका – XXI)

उपमा अलंकार (पूर्वमेघ)

तस्मिन्नद्रौ कतिचिद् बला विप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान्कनक भ्रंश रिक्त प्रकोष्ठः।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानु
वक्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।। (2)

प्रिया से बिछुड़े हुये (कृशता के कारण), सोने के कड़े के गिर जाने से शून्य कलाई वाले, उस कामी ने कुछ महीने उस पहाड़ पर बिता कर आषाढ़ के पहले दिन पहाड़ की चोटी से सटे हुये बादल को देखा, जो कि टीले से मिट्टी उखाड़ने के खेल में तिरछे दांतों से प्रहार करते हुये हाथी के समान दिखाई दे रहा है।

येन श्यामं वपुरतितरां कान्ति मापत्स्यतेते (15) मध्येश्याम स्तनइवभुवः शेषविस्तारपाण्डुः (18) रेवा द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाः (19) त्सभ्रूभङ्गमुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मिः (24) शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः (31) कुन्द्क्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामत्म बिम्बं (49) धारापातैस्त्वमिव कमला न्यभ्यवर्ष न्मुखानि (50) तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी (53) शोभां शुभ्रत्रिनयन वृषोत्स्वात पड़क् पमेयाम (54) श्रृङ्गोच्छायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितिः खं (60) तस्योत्सङगे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलां (65)।

उत्तरमेघ –

नीवीबन्धोच्छवसितशिथयत्रबिम्बाधारणां,
क्षौमं रागादनिभृत करेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु।
अर्चिस्तु ङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्,
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः।। (7)

जहाँ (अलका में) चंचल हाथों वाले प्रियतमों द्वारा कामवश गाँठ खोल देने से ढीले पड़े हुए रेशमी वसन हटाने पर लज्जा से मरी जाती हुई, बिम्ब–फल से होठों वाली सुन्दरियों द्वारा (बुझाने के लिए) फेंकी गई चूर्ण की मुट्ठी ऊपर को उठती हुई किरणों वाले रत्नों के दीपकों तक पहुँच कर भी बेकार चली जाती है।

विधुत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः यत्र तैस्तैर्विशेषै (1) नीवीबन्धोच्छवसित शिथिलं यत्र बिम्बाधराणां (7) तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी (22) जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् (23) त्वययासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या (35) यास्यत्यूरु सरसकदलीस्तम्भ गौरश्चलत्वम् (36)।

परतिवस्तूपमा अलंकार

एभिः साधो ! हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा,
द्वारोपान्ते लिखित वपुषौ शंखपद्मौ च दृष्ट्वा।
क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं,
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वाभिख्याम्।। (20 उ.म.)

हे भद्रे ! हृदय में रखे इन चिन्हों से तथा द्वार के दोनों ओर चित्रित शंङ्ख और पद्म निधियों को देखकर तुम अब मेरे वियोग के कारण शोभा विहीन बने मेरे घर को अवश्य पहचान लोगे। सूर्य के चले जाने पर कमल अपनी शोभा धारण करता ही नहीं, यह निश्चित बात है।

इत्यादि उपमा अलंकारों का वर्णन किया है।

अर्थान्तरन्यास अलंकार –

धुमज्योतिः सलिलमरुतां सन्नीपातः क्व मेघः,
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयगुहयकस्तं ययाचे,
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।। (5)

कहाँ तो धुआँ, प्रकाश, जल और वायु इनका सम्मिश्रण रूप मेघ और कहाँ सशक्त इन्द्रियों वाले प्राणियों द्वारा पहुँचाए जाने वाले सन्देश इस (बात) को न विचारते हुये यक्ष ने उस (बादल) से प्रार्थना की; क्योंकि काम से पीड़ित लोग जड़ चेतन पदार्थों के प्रति स्वभावतः दीन–विवेकशून्य हो जाया करते हैं।

संदेशार्थाः क्वपटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गु गुहयकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।।
यात्र्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा – (6)

करू संनद्वे विरहविधुरां त्वययुपेक्षेते जायां (8) मब्यपन्नामविहत गतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् (9) वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सनुमानाम्रकूटः (17) हत्वा नीलं सलिलवसन मुक्तरोधोनितम्बम् (43) रापन्नार्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युन्तमानाम् (55)।

उत्तरमेघ –

त्वामप्यस्त्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं – (33)
कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङमात्किञ्चिदून – (40)
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव – (41)
एतस्मात्मां कुशलिनम् भीज्ञानदानाद्विदित्वा – (52)
कच्चित्सौम्य ! व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वयामें – (54)

रूपक अलंकार

वीचिक्षोभस्तनितविहग श्रेणिकाञ्चचीगुणायाः,
संसर्पन्त्या स्खलित सुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य,
स्त्रीणामाघं प्रणय वचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।। (28)

मार्ग में निर्विध्न्या नदी के, जिनकी लहरों के चलने के शब्द करते हुए पक्षियों (हंसों) की पंक्ति ही करधनी है और जो पत्थर जल के टकराने के कारण, जवानी के मद के कारण ठोकर खाने से सुंदर चलती हई भंवर रूपी नाभि को दिखा रही है, सम्पर्क में आकर उसके रस (जल श्रृंगार) को ग्रहण करना, क्योंकि स्त्रियों का प्रेमियों के प्रति हाव–भाव प्रथम याचक का शब्द हुआ करता है।

गम्भीरायाः पयसि सरिताचेतसीव प्रसन्ने,
छायात्माऽपि प्रकृति सुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।
तस्मादस्या कुमुदविशद्वर्हसि त्वं न धर्या –
न्मोधीकर्तु चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि।। (42)

गंभीरा नदी के प्रसन्न (निर्मल) जल के भीतर तेरी स्वभावतः सुंदर प्रतिबिम्ब रूपी आत्मा इस प्रकार प्रवेश करेगी जैसे कि प्रसन्न (प्रेम के कारण आनंद भरे) (नायिका के) हृदय में (नायक प्रवेश करता है) अतः इस (गम्भीरा) की मछलियों को कुमुदों जैसी सफेद फुर्तीली अच्छलन (लुढकन) रूपी चितवनों को धीरता के कारण निष्फल मत जाने देना।

न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि :– (42)

तत्र स्कन्दं नियत वसतिं ——— संभृतं तद्वितेज :– 45

उत्तरमेघ हंसश्रेणीरचितरसना नित्यपद्मानलिन्य :– 3

तस्यास्तीरे रचित शिखरः ————त्वां तमेव स्मरामि – 17

उत्प्रेक्षा अलंकार–

नेत्रानीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमि,
रालेख्यानां नवजलकणैर्दोषमुत्पाघ सदयः।
शंकास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जलमार्गे,
धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति।। (8)

ले जाने वाले पवन द्वारा सात मंजिले महलों के ऊपर तले भागों में जाये गए, नयी–नयी जल कणिकाओं द्वारा सुंदर तस्वीरों को खराब करके डरे हुए से, धुएँ के निकलने का अनुकरण करने में चतुर बने हुए तुम्हारे जैसे मेघ बिखर–बिखर के जल्दी–जल्दी खिड़कियों से निकल भागते हैं।

तन्वी श्यामा शिखरिदशनाः क्वबिम्बाधरोष्ठी,
मध्ये क्षमा चकित हरीणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणी भारा दल सगमना स्त्रोतनम्रा स्तनाभ्यां,
या यत्र स्याघुवतिविषये सृष्टिराधेव धातुः।। (22 उ.म.)

दुबली–पतली युवावस्था को प्राप्त नुकीले (तीखे) दाँत, पके हुए बिम्ब (फल) के समान निचले होंठ, पतली कमर, भयभीत हिरणी के समान नयन, गहरी नाभि, एवं नितम्ब – भार से मन्द–मन्द गतिवाली स्तनों से कुछ झुकी सी तथा युवतियों से ब्रह्मा की प्रथम रचना सी जो (स्त्री) वहाँ (घर में) हो उसे मेरी पत्नी समझना।

निचैराख्यं गिरीमधिवसेस्त्रव विश्रान्ति हेतो,
स्त्व त्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद् गारि भिर्नागराणा,
मुद्दामानि प्रथयति शिला वेश्म भिर्यो वनानि। (25)

हे मेघ ! वहाँ (विदिशा में) विश्राम करने के लिए (तुम) नीचैः नाम वाले पर्वत पर ठहरना, जो कि पूरे खिले हुए फूलों से तुम्हारे संसर्ग के कारण रोमांचित हुआ सा लगेगा तथा वेश्याओं की रति क्रीडाओं में (प्रयुक्त) सुगंध को उगलने वाले पत्थर के गृहों (गुफाओं) के द्वारा नगरवासियों के उभरे हुए यौवन को प्रकट करता होगा।

प्राप्यावन्तीनुरयनकथा कोविदग्रामवृध्दा –,
न्यूर्वोदिष्टामुपसर पुरीं श्री विशालां विशालाम्।
स्वल्पीभूते सुचरितफुले स्वर्गिगा गा गतानां,
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कांतिमत्खण्डमेकम्।। (30)

अवंती देश में पहुँच कर जहाँ के गाँवों के वृद्ध पुरुष उदयन राजा की कथाओं से अच्छी तरह परिचित हैं, (तुम) पूर्व निर्दिष्ट विशाल संपत्ति वाली विशाला (उज्जयिनी) नगर में जाना, जो ऐसी लगती है कि मानो पुण्य फल के कम हो जाने पर पृथ्वी पर (लौट) आये स्वर्ग वालों के बचे–खुचे पुण्यों द्वारा (अपने साथ) लाया गया स्वर्ग का एक उज्ज्वल टुकड़ा हो।

त्वय्यादातुं जलमवनते शाडगिणों वर्णचौरे,
तस्याः सिन्धो पृथूमपि तनुदूरमावात्प्रवाह्य।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयों नूनमावजर्य दृष्टी,
रेक मुक्तागुमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम्।। (48)

कृष्ण का रंग चुराने वाले (अर्थात् काले–काले) तेरे (चर्मणवती के) जल को लेने के लिए नीचे झुकने पर, आकाश में विचरने वाले (सिध्द–गन्धर्व आदि) उस नदी के प्रवाह को जो विस्तृत होने पर भी दूर होने के कारण छोटा सा (लगेगा) आँखों के नीचे की ओर करके इस प्रकार देखेंगे मानो कि (यह) पृथ्वी की एक लड़ी मोतियों की माला हो, जिनके मध्य में इंद्र–नील मणि लगा हुआ है।

न्पूर्वोदिष्टामुपसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् – 30
त्वययादातुं जलमवनते –––––––– स्थुलमध्येन्द्रनीलम् – 48

उत्तरमेघ

शंकास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गे – 8
तन्वी श्यामा शिखरिदशना –––सृष्टिराघेव धातुः – 22

काव्यलिंग –

गच्छन्तीनां रमणवसति योषितां तत्र नक्तं,
रुद्रालोके नरपतिपथे सूचीभेघैस्तमोभिः।
सौदामन्या कनक निकष स्निग्धया दर्शयोर्वो,
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा च भर्विक्लवास्ताः।। (39)

वहाँ (उज्जयिनी में) रात को (अपने) प्रेमियों के घरों को जाती हुई स्त्रियों को घने अंधकार के कारण न दिखाई देने वाले राजमार्ग में कसौटी पर सोने की रेखा के समान चमकने वाली बिजली द्वारा भूमि दिखाना और बरसने एवं गरजने का शब्द न करना, क्योंकि वे डरपोक होती हैं।

यत्र स्त्रीणां प्रियतम भुजोच्छवासितालिड्गीताना,
मड्गलानिं सुरत जनितां तन्तुजाला वलम्बाः।
त्वसंरोधापगम विशदैश्चंद्र पादैनिशीथे,
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः।। (9)

जहाँ (अलका में) तुम्हारी रुकावट हट जाने से निर्मल (बने) चाँद की किरणों (के संपर्क) से स्वच्छ जल की कणिकाओं को टपकाने वाली झालरों से लटकती हुई चन्द्रकान्त मणियाँ आधीरात के समय, प्रियतमों की भुजाओं से ढीले पड़े आलिंगनों वाली स्त्रियों की अंगों में सम्भोग से उत्पन्न हुई थकावट को दूर करती हैं।

काव्यलिंग अलंकार

तस्मिन्काले जल्द ! यदि सा लब्धनिद्रासुखास्या –
दत्वा स्यैनां स्तनितविमूखो याममात्रं सहस्व।
या भदस्याः प्रणयिनी मयि स्वप्नलब्धे कथञ्जचित्,
सघः कष्ठच्युतभुजलताग्रंथि गाढ़ोंपगूढम्।। (37 उ.म.)

हे मेघ ! उस समय यदि मेरी प्रियतमा मीठी नींद ले रही हो तो बिना गर्जन के प्रहर भर इनके पीछे बैठ कर प्रतीक्षा करना। इसके प्रियतम मेरे किसी तरह स्वप्न में प्राप्त हो जाने पर (हमारा) गाढ़ आलिंगन एकाएक गले में लता जैसी भुजाओं के बंधन से रहित न हो जाये।

भित्त्वा सघः किसलयपुटान्देवदारूद्रुमाणां,
ये तत्क्षीर स्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृन्ताः।
आलिंगयन्ते गुणवती ! मया ते तुषाराद्रिवाताः,
पूर्व स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेंभिस्तवेति।। (47 उ.म.)

देवदारु वृक्षों की कोपलों की तहों को तत्काल खोल कर उनके बहते हुए दूध से सुगन्धित हुई दक्षिण की ओर चलने वाली हिमालय पर्वत की वायु को हे गुणवती ! मै इस विचार से आलिंगन करता रहता हूँ कि संभवतः इसने तुम्हारे शरीर को पहले अवश्य छुआ होगा।

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्वालोके नरपतिपथे सूचि भेद्यैस्तमोभिः।
सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वी
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा च भुर्विक्लवास्ता (39)

उत्तरमेघ –

यत्र स्त्रीणां प्रियतम भुजो ---------- वस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः (9)

जलद ! यदि सा ------ गाढोपगूढम् (37)

तस्मिन्कालेपूर्व स्पृष्टं यदि किल भवदेङ्गमेंभिस्तवेति (47)

समासोक्ति अलंकार –

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्त वृष्टि –
र्जम्बू कुञ्ज प्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः।
अन्तः सारं धन ! तुलयितुं ननिलः शक्ष्यति त्वां,
रिक्तः सर्वो भवति ही लघुः पूर्णतागौरवाय।। (20)

वर्षा को उँड़ेले हुए तुम जंगली हाथियों के सुगन्धित वाले मद से सुगन्धित (और) जामुनों के कुञ्जों द्वारा रोके गए वेग वाले उस (नर्मदा) के जल को लेकर जाना। हे मेघ ! भीतर से ठोस बने हुए तुझे वायु हिला न सकेगी, क्योंकि प्रत्येक खाली वस्तु हल्की होती है (और) भरापन गुरुता के लिए (होता है)।

विश्रान्तः सन् व्रज "नगनदीतीरजानां" निषिञ्चच,
न्मुधानानां नवजलकणैर्यू थिकाजाल कानि।
गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्त कर्णोत्पलानां,
छायादानात्क्षण परिचितः पुष्पलावीमुखानाम्।। (26)

वहाँ विश्राम करके पहाड़ी नदियों के किनारों पर (स्थित) बागों में जूही की कलियों को नये जल की बूँदों से सींचता हुआ, फूलों को तोड़ने वाली स्त्रियों के मुखों का, जहाँ कानों में (लटकाये) कमल गालों में आये हुये पसीने को हटाने की बाधा से मुरझाये होंगे, छाया देने के कारण क्षण भर परिचय प्राप्त करते हुए जाना।

"वेणीभुतप्रतनुसलिला" तामतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरूहतरुभ्रंशि भिर्जीर्णपैः।
सौभाग्यं ते सुभग विरहा–वस्थया व्यञ्जयन्ती,
काश्यॅ येन त्यजति विधिना स त्यैवोपपाधः।। (29)

उस (निर्विंध्या) नदी को पार करके, हे भगवान! तू ऐसा उपाय करना जिससे कि सिन्धु नदी, जिसका क्षीण जल वेणी (स्त्रियों की चोटी) जैसा बना हुआ है जो किनारों पर उगे हुए वृक्षों से गिरने वाले पत्तों से पीली कान्ति वाली हो गई और (अपनी) विरहावस्था से तेरी भाग्यशालिता को प्रकट कर रही है, अपनी दुर्बलता को त्याग दे।

छायादा नाक्षाण परिचितः पुष्पलावी मुखानाम् (26)
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थय व्यञ्जयन्ती (29)

निदर्शना अलंकार –

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।
नृत्तारम्भोहर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्यः।। (38)
नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं –– कान्तेर्विभर्ति – 24

पीछे शिवजी के (तांडव) नृत्य के आरंभ में ताजे जपा के फूलों के समान लाल–लाल सायंकालीन कान्ति को धारण करता हुआ, ऊँचे (शिव जी की) भुजा रूपी वृक्षों के जंगल पर वृत्ताकार रूप में व्याप्त होकर, पारवती से भय रहित आँखों द्वारा टकटकी से देखी गयी भक्ति वाला (तू) शिवजी की हाथी के गीले (ताजे) चरम की इच्छा को दूर करना (अर्थात् स्वयं चरम का काम देना)।

अर्थापत्ति–

भर्तुमित्रं प्रियमविधवे ! विद्धि मामम्बुवाहं,
तत्सन्देशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां,
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि।। (39)

सुहागिन ! हृदय में रखे हुये तुम्हारे पति के सन्देशों को लिए तुम्हारे पास आए हुए मुझे तुम उसका प्रिय मित्र मेघ जानो, जो (अपनी) गंभीर तथा मनोहर गर्जन से मार्ग में थके–मांदे विरही–गणों की जो अबलाजनों की वेणियों (चोटियों) को खोलने के लिए लालायित है, (घर) आने की शीघ्रता करवाता है।

त्वामालिख्य प्रणय कुपितां धातुरागैः शिलाया,
मात्मनं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अश्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टि रालुप्यते में,
क्रूरस्त स्मिन्नपि न सहते सङमं नौ कृतान्तः।। (45)

(हे प्रिये !) धातुओं के रंगों से पत्थर पर प्रेम के कारण रूठी हुई तुम्हारी तस्वीरें बनाकर ज्यों ही मैं अपने आपको तुम्हारे पैरों पर गिरा हुआ बनाना चाहता हूँ, त्यों ही बार–बार उमड़े हुये आसुओं से मेरी आँखें भर आती हैं। निर्दयी दैव उस (चित्र) में भी हमारे मिलन को नहीं सहता (वास्तविक मिलन की तो बात ही क्या ?)।

अतिश्योक्ति अलंकार –

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पुर्यमाणाः,
संरक्तमिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरिभिः।
निर्हादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्था –
त्संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः।। (58)

वायु से भरे हुए बाँस मधुर शब्द कर रहे होंगे, प्रेम भरी किन्नरियाँ (महादेव द्वारा) त्रिपुरासुर के विजय का गान कर रही होंगी। (यदि) कन्दराओं में तुम्हारा शब्द मृदुंग की ध्वनि के समान हो जाये (तो) सचमुच महादेव के संगीत की सब वस्तुएँ जुट जाएँगी।

श्लेष अलंकार –

अद्रेः शृंगं हरति पवनः किं स्विदित्युन्मुखीभि,
र्दृष्टोत्साहश्चकित चकितं मुग्धसिद्धाङ्नाभिः।

स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं,
दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्ता वलेपान्।। (14)

क्या पवन पर्वत की चोटी को (उड़ाए) ले जा रही है? इस विचार से ऊपर मुँह किए हुये भोली–भाली सिद्धों की स्त्रियाँ बड़े आश्चर्य से तेरा उत्साह देखेंगी। तू गीली निचुलने (स्थल) वाले इस स्थान से दिग्गजों (दिशाओं के हाथियों) के बडी सूण्डों के प्रहारों से बचता हुआ उत्तर दिशा की ओर मुख किये हुये आकाश में उड़ जाना।

विशेषोक्ति अलंकार –

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्ध सोपानमार्गा,
है मैश्छन्ना विकच कमलैः स्निन्धवैदूर्यनालैः।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं,
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसा।। (16)

उस (मेरे घर) में मरकतमणि (पन्ना) की शिलाओं से बनी हुई सीढ़ियों वाली एक बावड़ी है, जो चिकने वैदूर्यमणि की नालवाले खिले हुये स्वर्णकमलों से व्याप्त है तथा जिनके जल में रहने वाले हंस तुझे देखकर भी दुःखरहित हुए पास ही में स्थित मानस सरोवर के प्रति उत्कृष्ठा नहीं करेंगे।

अनुप्रास अलंकार–

हित्वातस्मिन्भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता,
क्रोडाशैले यदिच विहरेत्पादचारेण गौरी।
भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तंभितान्तर्जलौघः,
सोपाननत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी।। (62)

उस क्रीड़ा–पर्वत पर साँप का कंगन फेंक कर शिव जी द्वारा दिए हाथ का सहारा लिय हुए पार्वती यदि पैदल घूमे (तो) आगे–आगे चलते हुए (तुम) जल प्रवाह को भीतर ही रोककर (तथा) अपने शरीर कि पौड़ियों के क्रम से बना मणियों की ढलानों पर चढ़ने के लिए सीढ़ी का काम देना।

परिसंख्या अलंकार –

आनन्दोत्थं नयनसिललं यत्र नान्यैर्निमित्तै,
र्नान्य स्तापः कुसुमशरजादिष्ट संयोग साध्यात्।
नाप्यन्यस्मात्प्रणय कलहाद् विप्रयोगोपपत्ति,
र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति।। (4 उ.म.)

जहाँ (अलका) में यक्षों के आँसू आनंद के कारण गिरते हैं, और कारण से नहीं, प्रियजन के समागम से मिट जाने वाले काम के ताप के अतिरिक्त अन्य कोई ताप (क्लेश) नहीं, प्रणय–कलह के सिवाय विरह–प्राप्ति का अन्य कोई कारण नहीं और यौवन में भिन्न (जीवन की) कोई अवस्था नहीं।

दीपक अलंकार –

आलोकेते निपतति पुरा सा बलि व्याकुला वा,
मत्सादृशयं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ति।
पृच्छन्ती वा मधुर वचनां सरिकां पञ्जरस्थां,
कच्चिद् भर्तुः स्मरसिरसिके ! त्वं हि तस्य प्रियेति।। (25 उ.म.)

(हे मेघ !) या तो देवताओं की पूजा में लगी हुई, या अनुमान द्वारा जानी जाने वाली, विरह से दुबली मेरी आकृति का चित्रण खींचती हुई, या हे रसिल्पी! क्या तुझे कभी (अपने) स्वामी की याद आती है ? क्योंकि तू उनकी प्यारी है। इस तरह मीठा बोलने वाली पिंजरे में बंद मैना को पूछती हुई (वह मेरी प्रियतमा) तुझे जल्दी ही दिखाई पड़ेगी। (25 उ.म.)[3]

निष्कर्ष –

महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में अर्थालंकार को अधिक महत्त्व दिया है, और उसमें भी विशेषतः 'उपमा' को जिसके कारण ही उनकी जगत में "उपमा कालिदासस्य" यह उक्ति प्रसिद्ध है। कालिदास की उपमायें बड़ी वास्तविक, सरस, तथा मार्मिक होती हैं। इनकी उपमायों में कहीं शास्त्रीय है, तो कहीं प्राकृतिक, कहीं मूर्त, तो कहीं अमूर्त। अतएव वे जगत में अद्वितीय हैं।

उपमा के अतिरिक्त कवि ने उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, रूपक, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का मेघदूत में अच्छा निदर्शन होता है। भावाभिव्यक्ति एवं रस व्यंजना की दृष्टि से कवि के अर्थान्तरन्यास भी कुछ कम नही हैं। कुछ अर्थान्तरन्यास सुभाषित या सूक्तियों के रूप में प्रचलित हो गये हैं। अतः कहा जाता है –

"अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासों विशिष्यते।"[4]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रतियोगिता साहित्य सीरिज – डॉ. मुरारीलाल (390)
2. चतुष्टयी – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी (112)
3. मेघदूतम् – (महाकवि कालिदास) मोतीलाल, बनारसीदास – जवाहर नगर दिल्ली–110007
4. चतुष्टयी – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी (112)